ध्यान और अनुभूति

❑ डॉ. अशोक जैन 'सहजानन्द'

ध्यान और अनुभूति के माध्यम से डॉ. श्री अशोक जैन 'सहजानन्द' ने यह बताने का प्रयास किया है कि अनुभूति जितनी तीव्र होगी ध्यान उतना ही प्रबल होगा। ध्यान कषायों से आत्मा को विरत कर उपशांत बनाता है और आत्मा में एक अलौकिक ज्योति प्रगट करता है। अनुभूतिजन्य बन पड़ा है — यह आलेख। — सम्पादक

अनुभूति

मार्ग पर चलते हुए हमारे सामने अनेक दृश्य आते हैं किन्तु घर पहुँचते ही उन्हें भूल जाते हैं। समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान पर दुर्घटना हो गई और अनेक लोग मर गए। हम समाचार पत्र पढ़कर एक ओर रख देते हैं। ऐसा लगता है जैसे वह घटना हुई ही नहीं अथवा उसका हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। अनेक स्थानों पर विपत्ति के कारण हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इन समाचारों को पढ़कर किसी के मन में तनिक सा संवेदन होता है, मुँह से एक आह निकलती है और अनुभूति समाप्त हो जाती है। यदि उन दुर्घटनाओं में उसका कोई आत्मीय होता है और वह जितना निकट होता है, अनुभूति उतनी ही उत्कट और स्थायी होती है। इसी प्रकार यदि दुर्घटना हमारे सामने हो तब अनुभूति अपेक्षाकृत प्रबल होती है। सामने लेटे हुए रुग्ण या घायल की कराहट जो संवेदन उत्पन्न करती है, दूरस्थ सैकड़ों व्यक्तियों की कराहट का समाचार, उत्पन्न नहीं करती। इन उदाहरणों से निष्कर्ष निकलता है कि घटना जितनी निकट होगी, अनुभूति भी उतनी ही प्रबल होगी।

आत्मीयता से अनुभूति प्रबल

दूसरा तत्व **आत्मीयता** है जिस व्यक्ति को हम पराया समझते हैं, उसके साथ प्रत्यक्ष दुर्घटना होने पर भी अनुभूति प्रबल नहीं होती। सड़क पर एक व्यक्ति बस या स्कूटर से टकराकर घायल हो जाता है किन्तु हमें अपने कार्यालय में ठीक समय पर पहुँचने की पड़ी रहती है। दुर्घटना को देखकर भी अनदेखी कर देते हैं। कार्यालय में पहुँच कर यदि उसकी चर्चा भी करते हैं तो उस चर्चा में हमारे हृदय की वेदना प्रगट नहीं होती। इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति हमारा आत्मीय है तो हम कार्यालय को भूलकर उसके उपचार में लग जाते हैं। **बहुत बार ऐसा भी होता है, एक व्यक्ति को कष्ट पीड़ित देखकर हम उसकी सुरक्षा में लग जाते हैं किन्तु जब उसका कष्ट लम्बे समय तक चलता है और दैनिक आवश्यकताओं में अड़चनें आने लगती हैं तो सुश्रूषा शिथिल हो जाती है। एक दिन हृदय इतना कठोर हो जाता है कि सहानुभूति भी नहीं रहती। आत्मीय होने पर भी उसका कष्ट हमें विचलित नहीं करता। हमारी निजी आवश्यकताएँ उस अनुभूति को दबा देती हैं।**... इसके विपरीत यदि यह प्रतीत हो कि उस सुश्रूषा से स्वार्थपूर्ति भी होगी तो अनुभूति स्थायी ही नहीं उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है।

ध्यान की निष्पत्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुभूति को प्रबल बनाने के लिए **साक्षात्कार, लक्ष्य की आत्मीयता** तथा उसके द्वारा **स्वार्थ का पोषण** इन तीन तत्वों की आवश्यकता है। ध्यान को भी शक्तिशाली बनाने के लिए भी इन तीनों की आवश्यकता है। ईश्वर हमारी आत्मा से भिन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। उसकी खोज हमारी अपनी ही खोज है। **धन, संतान, पत्नी आदि अपने आप में प्रिय नहीं होते वे हमें तृप्त करने के कारण प्रिय लगते हैं किन्तु आत्मा अपने आप में प्रिय है। साथ ही वह आनन्द रूप है। उसे प्राप्त कर लेने पर समस्त दुःख मिट जाते हैं। समस्त स्वार्थ पूर्ण हो जाते हैं। उसके साक्षात्कार से बढ़कर कोई स्वार्थ नहीं है।** इस प्रकार पुनः-पुनः चिंतन करने पर भावना दृढ़ होती है और एक दिन साक्षात्कार हो जाता है। साधना जगत् में इस प्रक्रिया को ध्यान कहा जाता है।

ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए उसके स्वरूप और प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए। बिना विचारे किया गया ध्यान अभीष्ट फलदायक नहीं होता। साधक जिस ध्यान को प्रारम्भ करे निरन्तर उसी का अभ्यास करता रहे। बदलते रहने से यथेष्ट लाभ नहीं मिलता। ध्यान मन में विशेष प्रकार के संस्कार उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। ये संस्कार तभी उत्पन्न होते हैं, जब निरन्तर एक ही बात का चिंतन किया जाए। एक ही आलम्बन रहने पर वह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता चला जाता है उसमें दृढ़ता आती है। आँखें बंद करने पर भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे सामने बैठा हो। वास्तविक लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि ध्यान में प्रतिपादित प्रत्येक शब्द को समझकर मन में उतारने का प्रयत्न किया जाए। महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमारसंभव' में सार्वभौम सत्ता के रूप में ईश्वर का चित्रण किया है। उसका ध्यान करने से विश्व के कण-कण में परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। प्रत्येक हलचल में उसकी हलचल अनुभव होती है। साधक का उस महासत्ता के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। वह उसकी शक्ति को अपनी शक्ति समझने लगता है। ध्यान में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है दुर्बलताएं और दुःख दूर होते जाते है। अज्ञान का अंधकार मिटता चला जाता है और परमात्मा की ज्योति चमकने लगती है। ध्यान में हमें परमात्म तत्त्व का चिंतन करना चाहिए।

ध्यान में चिंतन आवश्यक

भगवद् गीता में स्थितप्रज्ञ का स्वरूप बताया गया है, उसका ध्यान करने से मन में दृढ़ता आती है। काम, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ आदि विकार शांत होते हैं। चित्त स्थिर और निर्मल बनता है। आत्म ज्योति प्रगट होती है। ध्यान में निम्नलिखित बातों का चिंतन करना चाहिए – जब समस्त कामनाएं शांत हो जाती है तो मन में किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न नहीं होती, मनुष्य अपने ज्ञान में तल्लीन रहने लगता है, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जिस प्रकार कछुआ समस्त अंगों को समेट लेता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति इंद्रियों को समेट लेता है उन्हें बाह्य विषयों की ओर नहीं जाने देता, उनकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। समझदार व्यक्ति इन्द्रियों को वश में रखने का प्रयत्न करता है। फिर भी वे मन को बलपूर्वक खींचती रहती है। उन सबको नियंत्रित करके मन को परमात्मा के ध्यान में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में – **"ध्यान चेतना की वह अवस्था है जहाँ समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूति में विलीन हो जाती हैं, विचारों में सामंजस्य आ जाता है, परिधियाँ टूट जाती हैं और भेद-रेखाएं मिट जाती हैं। जीवन और स्वतंत्रता की अखण्ड अनुभूति में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। संकुचित जीवात्मा विराट् सत्ता में विलीन हो जाता है।**

ध्यान का सम्बन्ध किससे?

साधारणतया ध्यान का सम्बन्ध आत्मा, ईश्वर आदि अतीन्द्रिय तत्त्वों के साथ जोड़ा जाता है किन्तु लौकिक जीवन में भी उसकी उतनी ही उपयोगिता है जितनी आध्यात्मिक जीवन में। हम व्यायाम द्वारा शारीरिक शक्ति प्राप्त करते हैं उसे अच्छे या बुरे किसी भी कार्य में लगाया जा सकता है। वैज्ञानिक अपने चिंतन का उपयोग नवीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वेषण में करता है। उसने ऐसी औषधियों का पता लगाया जिनसे करोड़ों व्यक्तियों के प्राण बच गए। उसने ही परमाणु अस्त्रों का भी पता लगाया जिनसे समस्त मानवता का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। व्यापारी अपना मनोबल व्यवसाय की वृद्धि में लगाता है, औद्योगिक विकास के साथ शोषण के तरीके भी सोचता है। राजनीतिज्ञ एक ओर प्रजा-पालन की बात सोचता है, दूसरी ओर शत्रु के नाश की। इस प्रकार मनोबल का उपयोग दोनों दिशाओं में होता आया है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने ध्यान को अध्यात्म के साथ जोड़ा।

प्रातः जगने से लेकर रात्रि में नींद आने तक हमारे मस्तिष्क को अनेक प्रकार के विचार घेरे रहते हैं। नींद के बाद भी सपनों में उनका तांता चलता रहता है। बहुत से विचार जीवन के लिए उपयोगी होते हैं। वे जब आते हैं तो मन में सुख और शांति की अनुभूति होती है, किन्तु अधिकांश विचार निरर्थक और मन को दुर्बल बनाने वाले होते हैं।

ध्यान : प्रकाश एवं उर्जास्रोत

ऐसा कोई लक्ष्य नहीं जिसे ध्यान के द्वारा प्राप्त न किया जा सके। ऐसा कोई रोग नहीं, जिसे ध्यान के द्वारा दूर न किया जा सके। विधिपूर्वक किया गया ध्यान हृदय को शुद्ध करता है और दृष्टि को निर्मल बनाता है। ध्यान ऊँचे उड़ने के लिए पंख प्रदान करता है और भौतिक जगत् की संकुचित परिधियों से ऊपर उठने का सामर्थ्य देता है। ध्यान के निरंतर अभ्यास से हम अपने दुःखों और कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं।

मानव शरीर में कुछ ऐसे केन्द्र हैं जो चेतना के विभिन्न स्तरों को प्रगट करते हैं। जब मन नीचे के केन्द्रों पर अधिष्ठित होता है तो क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि विचार घेर लेते हैं। शरीर अस्वस्थ रहने लगता है और मन अशांत, पर जब उन केन्द्रों को छोड़कर ऊपर की भूमिकाओं में पहुँचता है तब जीवन के सूक्ष्म तथा शक्तिशाली तत्वों के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि सात्विक गुणों की अभिव्यक्ति होने लगती है। विचार तथा व्यवहार में एकसूत्रता आ जाती है। पवित्रता, नम्रता, सहानुभूति आदि दैवी गुणों का विकास होने लगता है, मन के अन्तर्मुखी होने पर ही सच्ची शक्ति प्राप्त होती है। साधारण व्यक्ति विषम परिस्थितियों में पड़कर अपने आपको खो देता है। मानसिक संतुलन नष्ट हो जाता है। समझदार उस समय ध्यान और मानसिक स्थिरता का अभ्यास करता है। साधक को दृढ़ निष्ठा और एकाग्रता से ध्यान द्वारा जो प्रकाश मिलता है, उससे वह अपनी प्रत्येक इच्छा पूर्ण कर लेता है।

सभी व्यक्तियों का मानसिक धारतल एक-सा नहीं होता। अतः सभी को एक ही प्रकार के ध्यान से लाभ नहीं मिल सकता। जो व्यक्ति तमोगुणी है जिनमें अज्ञान की प्रधानता है, उसके चित्त को जागृत करने की आवश्यकता होती है। जिसका चित्त रजोगुणी है उसे शांत करने की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति में आसक्ति या राग की प्रधानता है उसे अनासक्ति का अभ्यास करना होगा और जिसमें द्वेष वृत्ति की प्रधानता है उसे मित्रता का अभ्यास करना होगा। अहंकारी को विनय सीखना चाहिए और जो आत्म-सम्मान खो चुका है उसे निज-शक्ति की पहचान करा होगी। जो अशांत है उसे शांति की आवश्यकता है और जो निष्क्रिय बना हुआ है उसे खड़ा होने की। जब हम अपने प्रिय-पात्र का चित्र देखते हैं (जो वास्तव में कागज का टुकड़ा होता है) उसे देखते ही ऐसी अनुभूति होती है जैसे सामने बैठा हो, तदनुसार सारी चेष्टाएँ बदल जाती हैं। ध्वज केवल कपड़े का टुकड़ा है किन्तु जब उसके साथ राष्ट्रीय अस्मिता जुड़ जाती है तो हम उसकी प्रतिष्ठा में मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः परमात्मा का कोई स्वरूप नहीं है फिर भी विविध कामनाओं को लेकर रूपों की कल्पना की गई है। फिर उन रूपों और उपासना पद्धतियों ने संप्रदाय का रूप ले लिया और परस्पर खंडन-मंडन होने लगा। इस सांप्रदायिकता के कारण ध्यान का जीवन के साथ सम्बन्ध टूट गया और वह शास्त्रीय चर्चा में ही सीमित हो गया। आज उसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। यदि सांप्रदायिक कदाग्रह छोड़कर वैज्ञानिक पद्धति पर अन्वेषण किया जाए तो ध्यान की ये प्रकियाएं जीवन के लिए बहुत उपयोगी बन सकती हैं।

- संपादक - 'आपकी समस्या-हमारा समाधान' (मासिक)

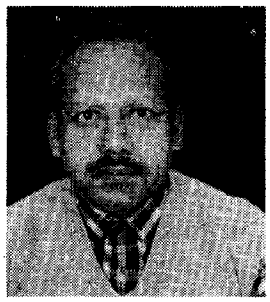

❑ डॉ. श्री अशोक जी 'सहजानन्द' का जन्म १६-२-४६ को मेरठ (उ.प्र.) में हुआ। शिक्षा-शास्त्री, साहित्यरत्न एम.ए., बी.एड., आर.एम.पी. आयुर्वेद ! साहित्यिक अभिरूचि, १०० से अधिक आलेख प्रकाशित ! प्रधान सम्पादक हैं- 'आपकी समस्या-हमारा समाधान' (मासिक-पत्र) के। सम्मान प्रदर्शन से दूर, कर्मठ अध्यवसायी ! जन्म से नहीं अपितु कर्मणा भी जैन ! महत्वपूर्ण अनेक ग्रंथों के सम्पादक एवं लेखक !

— सम्पादक

हम कहते हैं - "मकान बहुत सुंदर है" बहुत अच्छा है। किन्तु खड़ा किसके आधार पर है? नींव के आधार पर खड़ा है। उस नींव को तो याद ही न करे केवल ऊपर के निर्माण को देखकर ही कहें तो यह एक पक्ष होगा, एक दृष्टिकोण होगा। जैन दर्शन ने वस्तु को एकाकी दृष्टिकोण से देखने को "अपूर्ण" कहा है। उसे अनेक दृष्टियों से देखना चाहिए, क्यों कि वस्तु अनेक धर्मात्मक है।

जिसने प्रभु को अपने हृदय में बसा लिया है उसको याद करने की जरूरत नहीं रहती। उसका मन तो निरंतर, अखण्डरूप से उस प्रभु के स्वरूप में ही तन्मय रहता है। एकाग्र/लीन रहता है। कैसे? जैसे पनिहारी का घट में, नट का अपने संतुलन में, पतिव्रता नारी का पति में, चक्रवाक पक्षिणी का सूर्य में ध्यान रहता है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org